Vol. 10
Issue 1
15 January, 2019
ISSN 0975 1254 (PRINT)
ISSN 2249-9180 (ONLINE)
www.shodh.net
A Refereed Research Journal
And a complete Periodical dedicated to
Humanities & Social Science Research
शोध संचयन

# श्रीमद्भगवद्गीता : शिक्षा का उद्देश्य - मानवीयता का विकास एवं अनुशासित व्यवहार

**बीज शब्द :**

*श्रीमद्भगवद्गीता, शिक्षा का उद्देश्य, नैतिकता, आध्यात्मिकता, योग, आत्मानुशासन, स्वानुशासन*

*श्रीमद्भगवद्गीता में शिक्षा को मानवता के उत्थान का प्रदेय माना गया है। इसमें न केवल व्यक्ति का ज्ञानवर्धन होता है वरन् यह व्यक्ति के नैतिक, आध्यात्मिक एवं भौतिक मूल्यों में संवर्धन भी करता है। शिक्षा व्यक्ति में मनुष्यता के विकास के साथ ही आत्मानुशासन का भी विकास करती है। गीता मानसिक विकारों से बचने का सदैव परामर्श देती है इसीलिए काम, क्रोध, लोभ, मोह को त्याग कर व्यक्ति को संयमित एवं सार्थक जीवन जीने की प्रेरणा प्रदान की गयी है। शिक्षा के प्रति मानवीय दृष्टिकोण का विकास होने के कारण गीता में मनुष्य को पशु से श्रेष्ठ स्थान प्रदान किया गया है। प्रस्तुत शोध आलेख सामाजिक आकांक्षाओं की पूर्ति की दृष्टि से श्रीमद्भगवद्गीता प्रणीत शिक्षा की संभावनाओं को अन्वेषित करने का प्रयत्न है।*

*****

**डॉ० सुनीता सिंह**
असि. प्रोफेसर, एम.एड. विभाग,
वी.एस.एस.डी. कॉलेज, कानपुर।
E-mail: drsunitasinghvssd165@gmail.com

# श्रीमद्भगवद्गीता : शिक्षा का उद्देश्य - मानवीयता का विकास एवं अनुशासित व्यवहार

शिक्षा का मूलभूत उद्देश्य मनुष्य को पशुता की भूमि से ऊपर उठाकर उसका 'उद्धार करना' है, उसमें वह गुण भरना जो मानवीयता का विशेष लक्षण हैं और जो पशुओं में नहीं हैं। यह स्वयं अनुशासित रहकर ही किया जा सकता है। शिक्षा का उद्देश्य मानवीयता का विकास करना है। शिक्षा में मानवतावादी दर्शन का उद्देश्य मनुष्य के कल्याण और आनन्द पर केन्द्रित है। 'उसमें नैतिक और आध्यात्मिक मूल्य तथा भौतिक बहुलता दोनों सम्मिलित हैं। यह निर्धनता तथा निहित स्वार्थों का शत्रु है क्योंकि यह विश्व मानवता के विरुद्ध है। मनुष्य ही सभी वस्तुओं का मापदण्ड है। वह भाग्य निर्माता है। आध्यात्मिक सत्य की पूर्णता में मनुष्य ही एक आवश्यक तत्व है।[1] जैक्स के शब्दों में मानवीय पूर्णता ही मानवता का लक्ष्य होना चाहिए। जैसे यन्त्रवाद यन्त्रों की निपुणता को लक्ष्य बनाता है उसी प्रकार व्यक्ति की कुशलता ही मानवतावादी का लक्ष्य होनी चाहिए। सुविख्यात मानवतावादी शिक्षक मिल्टन के शब्दों में 'मैं उस शिक्षा को सामान्य एवं पूर्ण मानता हूँ जो मनुष्य को व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक कार्यों, युद्ध एवं शान्ति दोनों को न्यायपूर्ण, कुशलतापूर्ण एवं भव्य ढंग से करने की योग्यता प्रदान करे। दूसरे शब्दों में मानवतावाद का लक्ष्य सन्तुलित एवं पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण करना है।[2]

स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में भी शिक्षा का उद्देश्य है आन्तरिक पूर्णता का बाह्य प्रकाशन (External experession of internal perfection)। इसी कारण वे मानते हैं कि शिक्षा मनुष्य में निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति है। उन्होंने शिक्षा का एकमात्र लक्ष्य आध्यात्मिक विकास को माना है जिसे वे मानव निर्माण के लिए आवश्यक मानते हैं। वे शिक्षा का एक उद्देश्य व्यक्तित्व में मनुष्यता के विकास को भी मानते हैं। मनुष्यता का अर्थ स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि 'मनुष्य का तात्पर्य उन लौकिक एवं अलौकिक सद्गुणों को धारण करना है जिनसे मनुष्य में सद्गुण आ सकें। सद्गुणों की श्रेणी में वे आत्म-विश्वास, आत्म-श्रद्धा, आत्म-नियन्त्रण, आत्म-निर्भरता एवं आत्म-प्रेम को निहित करते हैं। वे कहते हैं कि जब व्यक्ति आत्म-चेतन हो उठता है, तब उसके अन्दर यह भावना आती है, 'उठो जागो, न रुको, जब तक कि परम लक्ष्य की प्राप्ति न कर लो।' शिक्षा का तृतीय महत्त्वपूर्ण लक्ष्य वे मानव व समाज की सेवा करना मानते हैं।[3] वे मानते हैं कि सेवा-भाव उत्पन्न करने के लिए व्यावहारिक अवसर अवश्य मिलने चाहिए। अभ्यास के द्वारा ही इस भावना का विकास होता है। सारे प्राणी ब्रह्ममय हैं। वे ब्रह्म के अंश के रूप हैं। वे मानते थे कि यथार्थ शिक्षा का लक्ष्य मानव सेवा द्वारा ईश्वर की सेवा करना है। महर्षि अरविन्द का भी मानना है कि शिक्षा का सच्चा आधार है मानव मन का अध्ययन। उनकी दृष्टि में पांडित्य पूर्णता पर आधारित शिक्षा-पद्धति बौद्धिक विकास में बाधा डालती है या रोड़े अटकाती है।[4]

श्रीमद्भगवद्गीता की शिक्षा मानवीयता के विकास का आदर्श प्रस्तुत करती है। गीता विहित कार्यों को करते हुए मनोनिग्रह के अभ्यास से मनुष्य को उसके स्वाभाविक विकास के उच्चतर सोपान तक पहुँचाती है और साथ ही सब कर्मों को परमेश्वर की उपासना के रूप में समर्पित करने के सन्देश के साथ समस्त सृष्टि की एकता का साक्षात्कार कराती है। गीता की शिक्षा के अनुसार समस्त जीवों के साथ अपना और परमेश्वर के साथ समस्त जीवों का अभेद स्थापित करना ही वह ज्ञान है, जिससे आत्मा को अज्ञानान्धकार के आवरण से मुक्त करने के लिए साधना की जानी चाहिए। जो मनुष्य सच्चा ज्ञान प्राप्त कर लेता है, उसकी विकसित दृष्टि से सुसंस्कृत और असंस्कृत, उच्च और नीच तथा एक योनि और दूसरी योनि का भी भेद मिट जाता है।[5] 'गीता' आत्मसंयम और सर्वव्यापी एकता की साधना के उच्चतम आदर्शों का प्रतिपादन करती है। वह दार्शनिकों के मनोविनोद की वस्तु नहीं है वरन् एक ऐसा ग्रंथ है जिसमें स्त्री पुरुषों से सच्चा अनुरोध किया गया है कि वे उसकी शिक्षा के अनुसार अपने जीवन को ढालें और अविलम्ब उसका पालन करें। गीता की शिक्षा छोटों और बड़ों दोनों के लिए है, जीवन-संघर्ष से निवृत्त लोगों के लिए भी। नि:संदेह गीता सब कालों के लिए है, परन्तु अन्य सर्वकालीन धर्मग्रन्थों के समान उसके शब्दों को उस देश और काल की सामाजिक व्यवस्था की पीठ-भूमिका के आधार पर पढ़ना चाहिए, जिसमें वह लिखी गई थी। उसमें जिन तत्वों का प्रतिपादन किया गया है वे मनुष्य की समानता के आधुनिक आन्दोलनों में प्रमाण की भांति सहायता पहुँचाने के लिए यथेष्ट संबल हैं। गीता के श्लोकों में सब कर्मों की समानता और उदारता का जो आग्रह है, उसे जन्मजात उच्च-नीच भेद स्थापित रखने का निमित्त नहीं समझना चाहिए। उसका ठीक वही अर्थ लगाना चाहिए, जो उससे प्रकट होता है।[6]

गीता में व्यक्त अनुशासन से संबंधित अवधारणा सर्वथा नूतन और आश्चर्यकारी है। अनुशासन के प्रति गीता में व्यक्त विचार पूरी तरह आधुनिक विचारों से मेल खाते हैं, बल्कि उससे भी आगे हैं। प्राचीन धारणा के अनुसार बालकों को अनुशासन में रखने के लिए शारीरिक दण्ड आवश्यक समझा जाता था, उन पर कठोर नियन्त्रण रखा जाता था, उनकी रुचियों, इच्छाओं तथा भावनाओं का दमन किया जाता था। अनुशासन स्थापना की इन

रीतियों का कुछ शिक्षा-शास्त्रियों ने विरोध किया और बालकों की इच्छाओं तथा भावनाओं के दमन को बुरा बताया। उन्होंने बताया कि बालकों में व्यक्तिगत भिन्नता होती है इसलिए सभी को एक लाठी से हाँकना ठीक नहीं है। इसके अतिरिक्त उनका विचार था कि बालक जन्म से ही पापी नहीं होता है। इन शिक्षा-शास्त्रियों ने न तो दमनात्मक और न ही प्रभावात्मक अनुशासन का समर्थन किया है, उसकी विचारधारा के फलस्वरूप अनुशासन की एक नई धारणा का जन्म हुआ जिसका तात्पर्य स्वानुशासन से है। आत्म-नियन्त्रण (Self Control) इसकी मुख्य विशेषता है।[7] आत्मनियंत्रण इसकी मुख्य विशेषता है।

श्रीमद्भगवद्गीता का छठा अध्याय आत्मसंयम योग है जो पूर्णतः आत्मानुशासन के सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। श्रीमद्भगवद्गीता पूर्ण आत्मानुशासित व्यक्ति को योगी कहती है। गीता में भगवान् कहते हैं- 'हे अर्जुन! सर्दी-गर्मी और सुख-दुःख आदि में तथा मान और अपमान में, जिसमें अन्तःकरण की वृत्तियाँ अच्छी प्रकार शान्त हैं अर्थात विकार रहित हैं, ऐसे स्वाधीन आत्मा वाले पुरुष के ज्ञान में सच्चिदानन्दघन परमात्मा सम्यक् रुप से स्थित हैं, अर्थात् उसके ज्ञान में परमात्मा के सिवाय अन्य कुछ है ही नहीं।'[8] 'जिसका अन्तःकरण ज्ञान-विज्ञान से तृप्त है तथा जिसकी स्थिति विकार रहित है और जिसने इन्द्रियाँ अच्छी प्रकार जीती हुई हैं तथा जिसके लिए मिट्टी, पत्थर और सुवर्ण समान हैं, वह योगी युक्त है अर्थात् उसे भगवान् की प्राप्ति हो चुकी है।'[9] 'यहाँ सर्दी गर्मी बाहर से प्राप्त होने वाले अनुभवों के प्रतीक हैं और सुख-दुःख मन में उठने वाले उन सभी भावों के प्रतीक हैं, जिनके कारण हमें प्रसन्नता अथवा क्लेश होते हैं। हम निरन्तर इस बात को जाँच सकते हैं कि हमें बाहर से प्राप्त होने वाले और मन के अन्दर उठने वाले द्वन्द्वों से अशान्ति तो नहीं होती है। यह बात दूसरी है कि इन द्वन्द्वों का सामना होने पर हम उनका उचित और सम्भव उपचार कर लें परन्तु मन को उनसे अछूता रखें।'[10] गीता मानसिक विकारों से बचने का सदैव परामर्श देती है। गीता के अनुसार काम, क्रोध और लोभ अच्छे संकल्प के शत्रु हैं जो मनुष्य अपने अन्दर अनासक्ति का विकास करना चाहता है, उसे मन को क्षुब्ध करने वाले इन विकारों से सतत् सावधन रहना चाहिए। यदि मन पर नियंत्रण हो गया तो शेष सब स्वयं सुधर जायेगा। विचारों की शक्ति अच्छाई और बुराई दोनों ही के लिए बहुत बड़ी होती है। यदि मन पर सावधानी के साथ पहरा न रखा गया तो कामना इन्द्रियों को वश में कर लेगी। हमारे विचारों पर अधिकार जमा लेगी, हमारी बुद्धि को भ्रष्ट कर देगी और अन्त में हमारा नाश कर देगी। इसलिए कामना के साथ युद्ध उसी समय छेड़ देना चाहिए जब कि वह हमारे विचारों के मंदिर में प्रवेश करने के लिए द्वार पर आकर खड़ी हो।

*यततो ह्यपि कौन्तेय पुरूषस्य विपश्चितः।*
*इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः।।* [11]

इन्द्रियों का स्वभाव इतना प्रबल है कि चतुर पुरूष के सच्चाई के साथ उद्योग करते रहने पर भी वे उसके मन को बलपूर्वक हर लेती है।[12]

शिक्षा के प्रति मानवीय दृष्टिकोण मनुष्य को अपने और विकास के लिए पूर्णतः युक्त करता है। मनुष्य का उद्धारक कोई और नहीं बल्कि वह मनुष्य स्वयं है। गीता में योग में आरूढ़ पुरुष के लक्षण बताते हुए कहा गया है कि- 'जिस काल में न तो इन्द्रियों के भोगों में आसक्त होता है और न कर्मों में ही आसक्त होता है, उस काल में सर्वसंकल्पों का त्यागी पुरुष योगारूढ़ कहा जाता है।[13] 'यह योगरूढ़ता कल्याण में हेतुक ही है इसलिए मनुष्य को चाहिए कि अपने द्वारा संसार-समुद्र से अपना उद्धार करे और अपनी आत्मा को अधोगति को न पहुँचावे, क्योंकि यह जीवात्मा आप ही तो अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है, अर्थात् और कोई शत्रु या मित्र नहीं है। अपना उद्धार करना हर मनुष्य का आवश्यक कर्त्तव्य है। हर मनुष्य का यह कर्त्तव्य है कि वह अपना उद्धार अपने आप करे। यहाँ उद्धार शब्द का भाव समझना अत्यन्त आवश्यक है।

अन्य शरीरधारियों की भाँति मनुष्य में भी पशुता के लक्षण होते हैं। इनमें चार लक्षण मुख्य है- 1. भोजन करना 2. सोना 3. सन्तान उत्पन्न करना और 4. भय। ये चारों लक्षण मनुष्य के शरीर से सम्बन्धित हैं। परन्तु अन्य सब प्राणियों की अपेक्षा केवल मनुष्य को एक विलक्षण तत्त्व भी दिया गया है। इस विलक्षण तत्त्व को 'बुद्धि' कहते हैं। इस बुद्धि के द्वारा मनुष्य अपनी नैसर्गिक पशुता से ऊपर उठ सकता है। यदि इसका उचित उपयोग नहीं किया जाये तो अन्य पशुओं की भाँति मनुष्य भी केवल एक पशु बनकर रह जाता है। चाहे वह अच्छे से अच्छा स्वादिष्ट भोजन करता हो, बहुत सजे-सजाए मकान में रहता हो और अच्छे-अच्छे वस्त्र पहनता हो, वह है केवल एक पशु ही। यदि वह पशु तुल्य भोगों को भोगने में अपना जीवन गँवाता है तो मनुष्य योनि के बाद फिर उसे उन्हीं पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़ों की योनि में जाना पड़ता है। क्योंकि उसने अवसर मिलने पर भी इससे मुक्त होने का कोई साधना नहीं की इसलिए श्लोक की पहली पंक्ति में भगवान् मनुष्य पर यह कर्त्तव्य आवश्यक रूप से लागू करते हैं कि वह पशु-स्वभाव से उद्धार करे। दूसरी बात यह कहते हैं कि यह उद्धार उसको अपने आप करना है कोई अन्य व्यक्ति किसी मनुष्य का उद्धार नहीं कर सकता। यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात है, क्योंकि मनुष्य जीवन में ही ऐसा होना सम्भव है।'[14] और यह स्वतंत्रता ही मनुष्य को मानवीय बना देती है।

**शेष पृष्ठ 80 पर**

जलाकर क्षार कर दूँ .....''[23]

निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि कोहली जी ने अपने कृष्णपरक उपन्यासों में नारी स्वतन्त्रता, नारी स्वार्थ, नारी महत्त्वकांक्षा, नारी ईर्ष्या, नारी संघर्ष, नारी प्रकृति गुण, नारी कामना, नारी सौन्दर्य, नारी सर्व विजेता, नारी प्रेम, नारी की कर्त्तव्यनिष्ठा, नारी ममता, माया, नारी गौरव, नारी तेज, नारी स्वाभिमान, नारी सम्मान तथा नारी प्रतिशोध आदि को अपनी लेखनी रूपी तूलिका से चित्रित किया, जो नारी के सभी गुणों-अवगुणों का वर्णन करते हैं।

### संदर्भ


1. महासमर - 1 बन्धन - डॉ0 नरेन्द्र कोहली पृ0 81
2. वही पृ0 81
3. वही पृ0 175
4. वही पृ0 215
5. वही पृ0 17
6. वही पृ0 435
7. वही 5 अन्तराल वही पृ0 274
8. वही 3 कर्म वही पृ0 370-71
9. वही 5 अन्तराल वही पृ0 255
10. वही 3 कर्म वही पृ0 149
11. वही 6 प्रच्छन्न वही पृ0 429
12. वही 6 प्रच्छन्न वही पृ0 429
13. वही 3 कर्म वही पृ0 301
14. वही 1 बन्धन वही पृ0 306
15. वही 4 धर्म वही पृ0 160
16. वही 6 प्रच्छन्न वही पृ0 389
17. वही 4 धर्म वही पृ0 333
18. वही वही पृ0 333
19. वही 6 प्रच्छन्न वही पृ0 82
20. वही पृ0 90
21. वही पृ0 94
22. वही पृ0 89
23. वही पृ0 91


◆◆◆

---

**पृष्ठ 68 का शेष** **श्रीमद्भगवद्गीताः शिक्षा का उद्देश्य मानवीयता का.....**

### संदर्भः


1. शिक्षा के सिद्धान्त, विजेन्द्र कुमार वशिष्ठ, पृष्ठ 14 ।
2. शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार, डॉ सरोज सक्सेना, पृष्ठ 53 ।
3. द्रष्टव्य, शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार, डॉ सरोज सक्सेना, पृष्ठ 69 ।
4. श्रीमद्भगवद्गीता, श्री राजगोपालाचार्य, पृष्ठ 78 ।
5. श्रीमद्भागवद्गीता, श्री राजगोपालाचार्य, पृष्ठ 79 ।
6. शिक्षा के तात्त्विक सिद्धान्त, पृष्ठ 14 ।
7. श्रीमद्भगवद्गीता, जीवन-विज्ञान, धर्मेन्द्र मोहन सिन्हा, पृष्ठ 178 ।
8. श्रीमद्भगवद्गीता, जीवन-विज्ञान, धर्मेन्द्र मोहन सिन्हा, पृष्ठ 179 ।
9. श्रीमद्भगवद्गीता, जीवन-विज्ञान, धर्मेन्द्र मोहन सिन्हा, पृष्ठ 178 ।
10. श्रीमद्भागवद्गीता, 2/60 ।
11. श्रीमद्भागवद्गीता, श्री राजगोपालाचार्य, पृष्ठ 79 ।
12. श्रीमद्भागवद्गीता 6/4 ।
13. श्रीमद्भगवद्गीता, जीवन-विज्ञान, धर्मेन्द्र मोहन सिन्हा, पृष्ठ 175 ।


◆◆◆

**पृष्ठ 61 का शेष** **महाकवि शचीन्द्र भटनागर और.....**


15. वही, पृ॰-25
16. वही, पृ॰-37
17. वही, पृ॰-37
18. वही, पृ॰-39
19. वही, पृ॰-39
20. वही, पृ॰-39
21. वही, पृ॰-26
22. वही, पृ॰-27
23. वही, पृ॰-29
24. वही, पृ॰-34-35
25. वही, पृ॰-35
26. वही, पृ॰-43
27. वही, पृ॰-48
28. वही, पृ॰-11


◆◆◆